न्यायदर्शन की शास्त्र प्रवृत्ति-3 1

B.A.(H) II Year

Paper 3, Unit II

डॉ. विकास सिंह

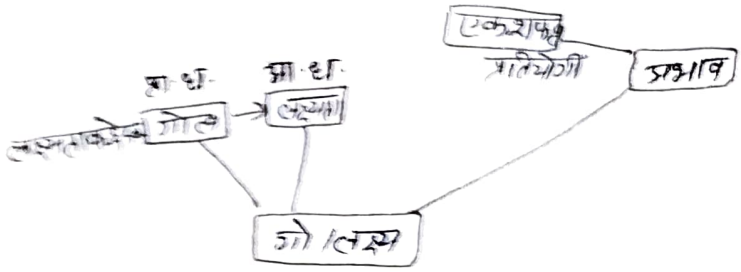

इस तरह इन तीनों दोषों से रहित ही लक्षण होता है। जैसे 'सास्ना' गो से इतर प्राणियों में नहीं रहती (अव्याप्ति दोषाभाव), सास्ना गो जाति के समस्त भाग में रहती है (अतिव्याप्ति दोषाभाव) साथ ही असम्भव दोष का अभाव होने से कहा जाता है कि गो का सास्ना लक्षण है।

③ परीक्षा :– न्यायभाष्य में परीक्षा के सन्दर्भ में कहा गया है–

"लक्षितस्य यथालक्षणमुपपद्यते न वेति प्रमाणैरवधारणं परीक्षा।"[1]

तात्पर्य यह है कि लक्षण किये पदार्थ का, जैसा लक्षण किया गया है, वैसा हो सकता है कि नहीं इस प्रकार प्रमाणों से निश्चय करने को परीक्षा कहते हैं। प्रकाशिका भाष्यव्याख्या में आचार्य ढुण्ढिराज शास्त्री का कहना है कि इस परीक्षा शब्द का 'परित:' अर्थात् की हुई शंकाओं को हटाकर, 'ईक्षण' निश्चय करना ऐसा व्युत्पत्ति के बल से अर्थ होता है।

न्यायमञ्जरीकार का मानना है कि लक्षित किये गये पदार्थ का लक्षण उपयुक्त है या नहीं, यह विचार परीक्षा है। वे कहते हैं:–

"लक्षितस्य तल्लक्षणमुपपद्यते न वेति विचार: परीक्षा।"[3]

तर्कभाषाकार ने सरल शब्दों में इसी लक्षण को कहा है–

"लक्षितस्य लक्षणमुपपद्यते न वेति विचार: परीक्षा।"[4]

1- न्या. भा., पृ०- 22

2- न्या. भा. प्र. व्या. पृ० - 22

3- न्या. म., पृ० - 34

4- त. भा., पृ० - 4

इस तरह 'परीक्षा' के बारे में कहा जा सकता है कि जो लक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है, वो लक्षण ठीक है या नहीं - को त्रिदोषों - अतिव्याप्ति, अव्याप्ति व असम्भव के आधार पर सिद्ध करना परीक्षा है।

न्यायवार्तिककार ने प्रश्न रूप में माना है कि विभाग नाम की चौथी प्रवृत्ति भी हो सकती है? तो भाष्यकार द्वारा शास्त्र की जो तीन ही प्रवृत्ति बताई है, वे उचित नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए न्यायवार्तिककार का कहना है-

'त्रिविधा चास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिरित्युक्तम्, उद्दिष्टविभागश्च न त्रिविधायां शास्त्र प्रवृत्तावन्तर्भवतीति, तस्मादुद्दिष्टविभागो युक्तः न, उद्दिष्टविभागस्योद्देश एवान्तर्भावात्, उद्दिष्टविभागः उद्देश एवान्तर्भवतीति, कस्मात्? लक्षणसामान्यात्, समानं लक्षणं नामधेयेन पदार्थाभिधानमुद्देश इति।'[1]

शास्त्र की प्रवृत्ति त्रिविध होती है, यह कहा गया है, किन्तु उस त्रिविध प्रवृत्ति में उद्दिष्ट के विभाग का अन्तर्भाव नहीं होता है, अतः उद्दिष्ट के विभाग को भी शास्त्र की एक स्वतन्त्र प्रवृत्ति मानना उचित है, यह प्रश्न है। इसका उत्तर यह है कि विभा दोनों के समान लक्षण होने से उद्देश में ही उद्दिष्ट के विभाग का अन्तर्भाव हो जाता है। नाममात्र से पदार्थ का अभिधान यह उद्देश और विभाग दोनों का समान लक्षण है।

न्यायमञ्जरीकार ने भी इस प्रश्न व उत्तर से सम्बद्ध मत दिया है "ननु च विभागलक्षणा चतुर्थ्यपि प्रवृत्तिरस्त्येव। भेदवत्सु प्रमाणसिद्ध। तद्धलादिषु तथा व्यवहारात् - सत्यम् - प्रथमसूत्रोद्दिष्टे भेदवति पदार्थे भवत्येव विभागः, उद्देशरूपानपायात्तु उद्देश एवासौ। सामान्यसंज्ञया कीर्तनमुद्देशः, प्रकारभेदसंज्ञया कीर्तनं विभाग इति। तथा चोद्देशतयैव तत्र तत्र भाष्यकारो व्यवहरति 'अयथार्थः प्रमाणोद्देशः - इत्याक्षेपे - तस्मा यथार्थ एव प्रमाणोद्देशः इति समाधानमभिधान। तस्मात् त्रिविधैव प्रवृत्तिः।"[2]

1- न्या· वा· 1·1·3

2- न्या·म· प्रमाण प्रकरण, पृ० 35

यही शंका हो सकती है कि विभागरूपा चौथी भी शास्त्र की प्रवृत्ति हो सकती है ;क्योंकि प्रमाण , सिद्धान्त , छल आदि जिन पदार्थों में अवान्तर भेद हैं उनमें विभागात्मक प्रवृत्ति व्यवहृत है । सत्य है प्रथम सूत्र में बताये गये अवान्तर भेदवाले पदार्थ का विभाग किया गया है , किन्तु वह उद्देश के लक्षण से संगृहीत होने के कारण उद्देश ही है , सामान्य नाम से पदार्थ का कथन उद्देश है और विशेष नाम से पदार्थ का कथन विभाग है , उद्देश तथा विभाग में ऐक्य होने के कारण ही प्रमाण का विभाग करने के अनन्तर 'प्रमाण का यह उद्देश अयथार्थ है' इस आक्षेप को प्रस्तुत कर उसके निराकरण की युक्ति बता 'इसलिए प्रमाण का यह उद्देश यथार्थ ही है' ऐसा समाधान करते हुए भाष्यकार ने तत्-तत् स्थल में उद्देश के रूप में ही विभाग का व्यवहार किया है , इसलिए शास्त्र की प्रवृत्ति त्रिविध ही है।

न्यायमञ्जरीकार ने प्रश्न उठाया है कि पहले उद्देश कहना चाहिए अथवा लक्षण । वे कहते हैं -

"तत्रोद्देश: प्रथममवश्यं कर्तव्य: । अनुद्दिष्टस्य लक्षणपरीक्षानुपपत्ते: । सामान्यविशेषलक्षणयोरपि पौर्वापर्यनियमोऽस्त्येव । अलक्षिते सामान्ये विशेषलक्षणावसराभावात् । परीक्षा तु लक्षणोत्तरकालभाविनीति तत्स्वरूपनिरूपणादेव गम्यते । विभागसामान्यलक्षणयोस्तु नास्ति पौर्वापर्यनियम: । पूर्वं वा सामान्यलक्षणं ततो विभाग: , पूर्वं वा विभाग ततस्सामान्यलक्षणमुच्यत इति । तदिहोद्देशस्तावद्व्याख्यात: ।"[1]

अर्थात् त्रिविध शास्त्र प्रवृत्ति में पहले उद्देश अवश्य करना चाहिए क्योंकि अनुद्दिष्ट का लक्षण और परीक्षा करना तो अनुचित ही है । सामान्य और विशेष लक्षणों में भी पौर्वापर्य का नियम तो होता ही है क्योंकि जब तक सामान्य रूप से लक्षण न दिया जाये तब तक विशेष लक्षण का औचित्य नहीं होता ।

---

1. न्या . म . , पृ० 35